वर्षम् - ०४ अङ्कः – ०४ शोधज्योतिः
जनवरी – दिसम्बर, 2022 ISSN-2350-0700

भारत को कर्मभूमि बनाने वाले संस्कृतानुरागी विदेशी विद्वान्

डॉ. हेरम्ब पाण्डेय[१]

सारांश

संस्कृत अपने वैशिष्ट्य के कारण शताब्दियों से वैश्विक मनीषा को प्रभावित करती रही है। यह कथन अत्युक्ति पूर्ण नहीं है कि संस्कृत के वैश्विक परिचय का सर्वाधिक श्रेय विदेशी विद्वानों को ही जाता है। उनके द्वारा परिश्रम पूर्वक संस्कृत रचनाओं के फारसी, अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश, रसियन आदि भाषाओं में किये गये अनुवादों को विश्व भर में पढ़ा और सराहा गया। विदेशी विद्वानों द्वारा अनूदित वे रचनाएं तुलनात्मक धर्म, संस्कृति, भाषा विज्ञान आदि की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में संस्कृतानुरागी विदेशी विद्वानों के कर्तृत्व का वर्णन उपर्युक्त बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए किया गया है।

भूमिका

'फ्रांस, जर्मनी, इटली यहाँ तक की डेनमार्क, स्वीडेन तथा रूस में भी लोगों के मन में भारत के प्रति एक विशेष प्रकार का मोह है, आकर्षण है। जर्मनी में तो जो विद्वान् संस्कृत साहित्य का अध्ययन करता है, वह प्राचीनों की ज्ञान गरिमा एवं उनके रहस्य ज्ञान का अधिकारी समझा जाता है। लोग उसके सामने श्रद्धा से सर झुकाते हैं तथा विद्वानों की श्रेणी में उसका विशेष आदर होता है। लोग समझते हैं कि उसने ब्रह्माण्ड के अनेक अज्ञात रहस्यों का भेदन कर लिया है।'[२] मैक्समूलर का उपर्युक्त विचार तात्कालिक पाश्चात्यों के मन में संस्कृत के प्रति उस आकर्षण ओर संकेत करता है, जिसके निर्माण में निःसंदेह शताब्दियाँ खर्च हुई होंगी। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि संस्कृत के प्रति उक्त आकर्षण या धारणा का निर्माण मैक्समूलर के पूर्ववर्ती अनेक विदेशी विद्वानों की बौद्धिक साधना का प्रतिफल है तो मैक्समूलर के बाद भी अद्यावधि पर्यन्त संस्कृतानुरागी अनेक विदेशी विद्वानों ने उक्त बौद्धिक साधना की ज्योति को

[१] *सहायक आचार्य-संस्कृत, लालता सिंह राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अदलहाट, मीरजापुर, (उ.प्र.) एन 1/30, ए-9 नगवाँ, लंका, वाराणसी-221005, मो0नं0-8127444710, ईमेल-herambapandey007@gmail.com*

[२] *मैक्समूलर (अनु. कमलाकर तिवारी)-भारत से हम क्या सीखें? इतिहास प्रकाशन संस्थान 492, मालवीय नगर, इलाहाबाद, जुलाई 1964 ई., पृ0 20*

क्षीण नहीं होने दिया। विदेशी विद्वानों में रॉथ, मैक्समूलर, कीथ आदि की भाँति अनेक ऐसे विद्वान थे, जिन्होंने परदेश में ही रहकर संस्कृत की साधना की तो मैक्डॉनल, कीलहार्न, पाल डायसन, गेरासिम लेबेदेव, मोनियर विलियम्स आदि अनेक ऐसे विद्वान् थे, जो अल्पावधि के लिए ही सही भारत आये। इसके विपरीत कुछ ऐसे भी विदेशी विद्वान् थे, जिन्होंने अनेक वर्षों तक भारत में रहकर संस्कृत का अध्ययन कर अध्यापन, लेखन, सम्पादन आदि कार्य किया। प्रस्तुत शोध पत्र में भारत भूमि को अपनी कर्मभूमि बनाने वाले ऐसे ही ग्यारह महत्त्वपूर्ण विदेशी विद्वानों के अवदानों पर विचार किया जा रहा है।

विषयवस्तु

उपर्युक्त सारणी में पहला नाम अबू रेहान मुहम्मद (अलबरुनी) का है। उसका जन्म 973 ई. में रव्वारिज्म (वर्तमान में उजबेकिस्तान) में हुआ था। वह महमूद गजनवी के साथ भारत आया। अलबरुनी लगभग तेरह वर्षों तक भारत में रहा। वह संस्कृत की ज्ञान निधि से प्रभावित हुआ और उसने अनेक शिक्षा केन्द्रों से सम्बद्ध होकर संस्कृत सीखी। तदनन्तर उसने एक ऐसे ग्रन्थ की रचना की, जिसने भारतीय मस्तिष्क की उपलब्धियों को देश-देशान्तर में फैलाने और मध्ययुग में मध्य एशिया और भारत के बीच सांस्कृतिक सम्बन्धों को विस्तार देने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।

अरबी, फारसी और हिब्रू भाषा के जानकर अलबरुनी ने लगभग बीस ग्रन्थों की रचना की, जिसमें कुछ मौलिक हैं तो कुछ अनुवाद। अलबरुनी की कृतियों में भारतीय संदर्भ में जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति है वह है 'किताबुल हिन्द' अथवा 'तहकीके हिन्द'। अलबरुनी ने 'किताबुल हिन्द' में अनेक संस्कृत की रचनाओं के प्राचीन संस्करणों का उपयोग किया, जिसमें ब्रह्मगुप्त, बलभद्र, तथा वराहमिहिर की रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'किताबुल हिन्द' में स्थल-स्थल पर भगवद्गीता, विष्णुपुराण, वायुपुराण, मत्स्यपुराण आदि के संदर्भ मिलते हैं। अलबरुनी ने कपिलमुनि और पतंजलि के मतों का बड़े ही आदर के साथ उल्लेख किया है। अलबरुनी की यह रचना इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि उसने जिन संस्कृत ग्रन्थों का संदर्भ लिया है, वे आज के प्रचलित संस्करणों से भिन्न हैं।

'किबातुल हिन्द' में संस्कृत व्याकरण एवं छन्द शास्त्र पर प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थ में हिन्दू वर्णव्यवस्था, मूर्तिपूजा, धर्म-दर्शन, गणित, ज्योतिष, खगोलशास्त्र, ब्रह्माण्ड, ग्रह, नक्षत्र, वर्ष, सम्वत्सर, पर्वत, नदी, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, ज्वार-भाटा, चारयुग, स्वर्ग-नरक, तीर्थस्थल, व्रत, पुनर्जन्म, दण्ड-विधान, आयुर्वेद, न्याय प्रक्रिया, अन्तिम संस्कार, दिन-रात, अधिमास, संवत्, पंचांग, रीतिरिवाज आदि भारतीय समाज में व्याप्त लगभग समस्त प्रवृतियों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है।[३] इसी

---

[३] *कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव-प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो-21, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद, नवम संस्करण-2007-08, पृ0 12*

क्रम में अलबरुनी ने भारतीय समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों, दुराग्रहों, अहंकार तथा संकीर्ण विचारों की भी चर्चा करते हुए उनकी आलोचना की है। रूसी विद्वान् बोगार्दो लेबिन एवं बिगासिन ने अपनी शोध परक पुस्तक 'भारत की छवि' में 'किताबुल हिन्द' की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि अलबरुनी की यह पुस्तक भारतीय धर्म, दर्शन, विज्ञान, साहित्य, रीतियों, प्रथाओं और अनुष्ठानों का विश्वकोश है। मध्ययुग में इससे पहले न इसके बाद किसी भी सभ्यता का इतना विस्तृत वर्णन नहीं किया गया। अलबरुनी ने संस्कृत सीखकर भगवद्गीता, पातंजल योगसूत्र तथा गौडपाद कृत सांख्यकारिका टीका जैसे मूल ग्रन्थ पढ़े। अलबरुनी के संस्कृत-ज्ञान-पाण्डित्य को इसी से समझा जा सकता है कि उसने अपने ग्रन्थ में संस्कृत के ढाई हजार से अधिक शब्दों का प्रयोग किया है।[४] अलबरुनी के अवदान को देखते हुए उसे संस्कृत एवं भारतीय संस्कृति से विश्व का विधिवत् परिचय कराने वाला प्रथम विदेशी विद्वान् कहा जा सकता है।

कालक्रम के अनुसार संस्कृत के अनुरागी विद्वानों में दूसरा महत्त्वपूर्ण नाम सर विलियम जोन्स का आता है। उनका जन्म 1748 ई. में लन्दन में हुआ था। वे 1783 ई. में कलकत्ता के सुप्रीम कोर्ट (फोर्ट विलियम) में जज के रूप में नियुक्त होकर आये। सर जोन्स अद्भुत प्रतिभा के धनी थे। एक विचारक, कवि, न्यायविद् तथा भाषाशास्त्री के रूप में वे यूरोप में लब्धख्याति थे। एक न्यायधीश के रूप में सर जोन्स ने अनुभव किया कि हिन्दुओं के सन्दर्भ में निर्णय के लिए हिन्दू धर्मशास्त्रों एवं विधिशास्त्रों का अध्ययन आवश्यक है, अतः उन्होंने संस्कृत सीखने का मन बनाया। उनके मार्ग में अनेक बाधाएँ आयीं परंतु वे विचलित नहीं हुए। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका में साहित्य सीकर के अन्तर्गत हिन्दुस्तान रिव्यू के 1907 ई. के जून अंक में प्रकाशित एस.सी. सान्याल के लेख का सन्दर्भ लेते हुए एक लेख प्रकाशित किया, जिसका शीर्षक था 'सर विलियम जोन्स ने संस्कृत कैसे सीखी? लब्धप्रतिष्ठित पत्रिका सरस्वती के जून 1908 के अंक में प्रकाशित यह लेख सर विलियम जोन्स के संस्कृत सीखने के मार्ग में आने वाली बाधाओं का रोचक दस्तावेज है।

संस्कृत अध्ययन के क्रम में सर जोन्स को संस्कृत नाटकों की समृद्ध परम्परा का ज्ञान हुआ। उन्हें सर्वाधिक प्रसन्नता कालिदास की रचना अभिज्ञान शाकुन्तल को पढ़कर हुई। इस रचना ने उनके मनोमस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ी। सर जोन्स ने अभिज्ञान शाकुन्तल के रचना-लालित्य से यूरोपीय समाज को अवगत कराने का निर्णय लिया। उन्होंने 1789 ई. में शाकुन्तल का अंग्रेजी अनुवाद किया। इस अनुवाद का जर्मन में अनुवाद जॉर्ज फास्टर ने 1791 ई. में किया, जिसे पढ़कर गेटे और हर्डर जैसे महाकवि भावविह्वल हो गये और कालिदास की इस कृति की मुक्त कण्ठों से प्रशंसा की। सर जोन्स

---

[४] *जगदीश प्रसाद बरनवाल 'कुन्द'-विदेशी विद्वानों का संस्कृत प्रेम, मेघा बुक्स एक्स-11, नवीन शाहदरा-दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017 ई., पृ0 22*

कालिदास के बड़े प्रशंसक थे। उन्होंने ही सर्वप्रथम कालिदास को भारत का शेक्सपीयर कहा था। सर जोन्स ने ऋतुसंहार का कलकत्ता से सर्वप्रथम मुद्रण कराया। सर जोन्स मनुस्मृति का अनुवाद 1790 ई. में मानव धर्मशास्त्र के नाम से प्रकाशित किया। कतिपय विद्वान् इसे सर विलियम जोन्स का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य मानते हैं। इसका जर्मन अनुवाद वेइमार से 1797 ई. में प्रकाशित हुआ। उन्होंने हितोपदेश और गीत गोविन्द का भी अनुवाद किया, जिसे यूरोप में पर्याप्त सराहना मिली।

सर विलियम जोन्स ने 1784 ई. में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की स्थापना की और 1794 ई. अर्थात् अपनी मृत्यु तक इस संस्था के अध्यक्ष रहे। इस संस्था से न केवल भारत अपितु एशिया से सम्बन्धित विभिन्न अनुसंधान कार्यों का भी सम्पादन किया गया। इस संस्था द्वारा अनेक दुर्लभ पाण्डुलिपियों का संरक्षण एवं प्रकाशन किया गया। एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल द्वारा अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन किया गया, जिनमें सर जोन्स ने संस्कृत व्याकरण एवं ध्वनि विज्ञान से सम्बन्धित अनेक लेख लिखे। उनके कृतित्व के गाम्भीर्य का देखते हुए उन्हें आधुनिक भाषा विज्ञान का जन्मदाता भी कहा जाता है। वे प्रथम मनीषी थे, जिन्होंने प्रख्यापित किया कि संस्कृत का ग्रीक एवं लैटिन से पारिवारिक सम्बन्ध है तथा इसका जर्मन, केल्टिक एवं फारसी से भी सम्बन्ध प्रतीत होता है। वे संस्कृत को ग्रीक से अधिक पूर्ण एवं लैटिन से अधिक सम्पन्न मानते थे।[५]

सर विलियम जोन्स का निधन 1793 ई. में भारत में ही हुआ। उन्होंने अड़तालीस वर्ष की अपनी आयु में से ग्यारह वर्ष संस्कृत के संरक्षण एवं सम्वर्धन में लगाया। उनका योगदान सदैव संस्कृतानुरागियों के लिए सम्माननीय रहेगा।

इस सारणी में तीसरे महत्त्वपूर्ण विद्वान् के रूप में चार्ल्स विल्किन्स का नाम आता है। वे 1770 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक अधिकारी के रूप में भारत आये। विल्किन्स पहले यूरोपीय थे, जिन्होंने संस्कृत सीखी। उनका संस्कृत के प्रति आकर्षण का मुख्य कारण भगवद्गीता थी। विल्किन्स का मानना था कि यहाँ के कर्मचारियों के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है, परन्तु समस्या यह थी कि उस समय तक न कोई संस्कृत व्याकरण की प्रामाणिक पुस्तक प्रकाश में आयी थी और न ही कोई शब्दकोश। विल्किन्स ने वारेन हेस्टिंग्स की प्रेरणा से वाराणसी में रहकर संस्कृत सीखी। तदनन्तर अपने प्रिय ग्रन्थ भगवद्गीता का अनुवाद प्रारम्भ किया। विल्किन्स ने जब वारेन हेस्टिंग्स से गीता के अनुवाद की चर्चा की तो उसने इसे देखने की इच्छा व्यक्त की। वारेन हेस्टिंग्स की एक विशेषता थी कि वह विद्या अनुरागी था और संस्कृत साहित्य के प्रति आदरभाव रखता था। विल्किन्स ने नवम्बर 1784 ई. में गीता का अंग्रेजी अनुवाद अवलोकनार्थ हेस्टिंग्स का पास भेंजा। हेस्टिंग्स इस ग्रन्थ को पढ़कर इतना अभिभूत हुआ कि

---

[५] *एम. विण्टरनिट्ज-प्राचीन भारतीय साहित्य का इतिहास भाग-1, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-1975 ई., पृ0 99*

उसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कौंसिल के प्रमुख सदस्य नियल स्मिथ को गीता की प्रशंसा करते हुए एक लम्बा पत्र लिखा और संस्तुति की कि इस ग्रन्थ का प्रकाशन कम्पनी अपने व्यय पर करे। यह कृति 1785 ई. में छपकर प्रकाश में आयी। वारेन हेस्टिंग्स के उस प्रशंसा पत्र को इसकी भूमिका में स्थान दिया गया। पुनः गीता का अनुवाद 1787 ई. में फ्रेंच तथा 1802 ई. में जर्मन में हुआ। यह अनूदित कृति यूरोप के साथ-साथ समस्त विश्व में उत्साह के साथ पढ़ी गयी। अनेक विदेशी विद्वानों-एडविन अर्नाल्ड, इमर्सन, पेटारोव, श्लीगल आदि ने गीता की महत्ता पर लेख लिखे। विल्किन्स ने गीता के प्रकाशन के दो वर्ष बाद 1787 ई. में जन्तुकथा हितोपदेश का तथा 1795 ई. में महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान का अनुवाद प्रकाशित किया। 1808 ई. में उनके द्वारा संस्कृत व्याकरण का प्रकाशन किया गया। इस पुस्तक के मुद्रण हेतु सर्वप्रथम संस्कृत अक्षरों को टाइप के अक्षरों के रूप में ढाला गया। संस्कृत अक्षरों का लेखन स्वयं चार्ल्स विल्किन्स ने किया।[६] उन्होंने 1913 ई. में मेघदूत का अनुवाद किया तथा 1919 ई. में संस्कृत शब्दकोश का निर्माण किया। 1750 ई. में जन्म लेने वाले चार्ल्स विल्किन्स, जो अपने सात्त्विक स्वभाव के कारण यूरोपीय ब्राह्मण की उपाधि से विभूषित थे, की मृत्यु छियासी वर्ष की आयु में 13 मई 1836 ई. में हुई।

भारत को कर्मभूमि बनाने वाले विदेशी विद्वानों की परम्परा में अगला नाम हेनरी थामस कोलब्रुक का आता है। कोलब्रुक को वेदों का पहला आधिकारिक पाश्चात्त्य विद्वान् माना जाता है। इनका जन्म 15 जून 1765 ई. में लन्दन में हुआ। पिता के प्रभाव से कोलब्रुक को अगस्त 1782 ई. में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा में लिया गया। कुछ समय पश्चात् 1786 ई. में उन्हें तिरहुत में असिस्टेंट कलेक्टर ऑफ रेवेन्यू के पद पर नियुक्त किया गया। उनके पिता की इच्छा थी कि उनका बेटा भारतीयों के धर्म एवं साहित्य का जानकार बने। चार्ल्स विल्किन्स द्वारा अनूदित गीता ने कोलब्रुक को संस्कृत के अध्ययन हेतु प्रेरित किया। कोलब्रुक विलियम जोन्स के सम्पर्क में आये और उन्हीं की प्रेरणा से हिन्दुओं की आचार संहिता (उत्तराधिकार तथा अनुबन्ध) का चार खण्डों में 1798 ई. में प्रकाशन किया। इसके पश्चात् कोलब्रुक भारततत्त्ववेत्ता एवं संस्कृतज्ञ के रूप में पहचाने जाने लगे। उक्त कृति में ब्राह्मणों की दिनचर्या, पूजन-हवन विधियों और हिन्दू समाज के रीति-रिवाजों एवं कर्मकाण्डों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें यजुर्वेद, सामवेद, रघुवंश आदि अनेक ग्रन्थों के सन्दर्भ विद्यामान हैं। कोलब्रुक ने भारतीय कानून पर और भी ग्रन्थ लिखे। उन्होंने भारतीय दर्शन, धर्म, व्याकरण, ज्योतिर्विज्ञान तथा अंक गणित पर अनेक वैदुष्यपूर्ण लेख लिखे। जिन्होंने भावी पीढ़ी के लिए मार्गदर्शन का कार्य किया। 1805 ई. में कोलब्रुक ने अपने निबन्ध 'On the Vedas' में सर्वप्रथम भारतीयों के प्राचीनतम पवित्र ग्रन्थों के विषय में

---

[६] *वही, पृ0 8*

निश्चित एवं विश्वसनीय जानकारी दी।[७] उन्होंने अमरकोश के साथ अन्य भारतीय कोशों, अष्टाध्यायी, हितोपदेश तथा किरातार्जुनीयम् का अंग्रेजी अनुवाद किया। इतिहास, पुरातत्त्व से सम्बन्धित अनेक स्थलों का निरीक्षण कर उन्होंने उन पर केन्द्रित कई महत्त्वपूर्ण शोधपत्रों का लेखन किया। कोलब्रुक का एक और महत्त्वपूर्ण कार्य यह था कि उन्होंने विभिन्न विषयों पर लिखी भारतीय पाण्डुलिपियों को एकत्रित किया। इस कार्य में लगभग 1000 पौण्ड खर्च हुए। यह पाण्डुलियों का संग्रह आज लन्दन के इण्डिया ऑफिस के ग्रन्थालय की सर्वाधिक अमूल्य निधि है। कोलब्रुक 1806 ई. से 1814 ई. तक रायल एशियाटिक सोसाइटी के अध्यक्ष रहे। उनके योगदान को ध्यान में रखते हुए मैक्समूलर ने कहा था कि कोलब्रुक के पहले और न ही कोलब्रुक के बाद सोसाइटी को उनके जैसा अध्यक्ष मिला। कोलब्रुक का निधन 1837 ई. में हुआ।

संस्कृत से अनुराग रखने वाले पाश्चात्त्य विद्वानों में होमन विल्सन का नाम प्रमुख है। उनका जन्म लन्दन में 1786 ई. में हुआ। वे चिकित्साशास्त्र के छात्र थे। विल्सन ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सम्बद्ध होकर 1809 ई. में कलकत्ता आये। यहाँ उन्हें प्राच्यविद् डॉ0 जॉन लेडन का सहयोगी होने का सौभाग्य मिला। लेडन के माध्यम से ही विल्सन को सर विलियम जोन्स के योगदानों की जानकारी मिली। उन्होंने संस्कृत सीखा और सर्वप्रथम 1813 ई. में मेघदूत का अंग्रेजी अनुवाद किया। यह अनुवाद भी विलियम जोन्स द्वारा किये गये अभिज्ञान शाकुन्तल के अनुवाद की भाँति ही यूरोप में प्रसिद्ध हुआ। विल्सन ने तीस हजार शब्दों वाले एक हजार पृष्ठों से अधिक 'संस्कृत-अंग्रेजी-कोश' का निर्माण किया, जो 1819 ई. में प्रकाशित हुआ। 1816 ई. से रायल एशियाटिक सोसाइटी के सचिव पद पर रहते हुए उन्होंने भारतीय समाज, संस्कृति, धार्मिक सम्प्रदायों के इतिहास, रीति-रिवाज, साहित्य एवं उसकी परम्पराओं पर आधारित अनेक विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे। विल्सन ने मृच्छकटिक, मालती माधव, उत्तररामचरित, विक्रमोर्वशीयम्, रत्नावली और मुद्राराक्षस का अंग्रेजी अनुवाद किया। इस प्रकार विल्सन ने संस्कृत नाट्य विधा का यूरोप से सर्वप्रथम परिचय कराया। विल्सन ने विष्णु पुराण एवं मत्स्यपुराण का अनुवाद किया। विल्सन ने ऋग्वेद का छः खण्डों में अनुवाद किया तथा इसके प्रारम्भ में 'वेदतत्त्व' नामक विद्वतापूर्ण भूमिका लिखी। लगभग तेईस वर्ष भारत में व्यतीत करने के बाद विल्सन 1832 ई. में इंग्लैण्ड लैटे। संस्कृत के इस महान् साधक की मृत्यु 1860 ई. में हुई।

संस्कृतज्ञ पाश्चात्य विद्वानों में डॉ0 जेम्स रॉबर्ट बेलेन्टाइन का नाम महत्त्वपूर्ण है। उनका जन्म दिसम्बर 1813 ई. में स्काटलैण्ड में हुआ। वे 1846 से 1861 ई. तक बनारस के गवर्नमेन्ट कालेज में प्रधानाध्यापक के रूप में नियुक्त थे। बेलेन्टाइन अरबी, फारसी और संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। वे संस्कृत धाराप्रवाह बोल सकते थे। बेलेन्टाइन देवनागरी लिपि एवं हिन्दी के समर्थक थे। उन्होंने हिन्दी व्याकरण

---

[७] *वही, पृ0 10*

से सम्बन्धित कई पुस्तकें लिखी। बेलेन्टाइन की प्रबल इच्छा थी कि अंग्रेज संस्कृत की महनीयता से परिचित हों। इस निमित्त उन्होंने 1851 ई. में 'फर्स्ट लेशन इन संस्कृत' की रचना की। इस पुस्तक का अनुवाद 1967 ई. में डॉ0 अमरनाथ पाण्डेय ने 'संस्कृत प्रथम पाठ' के नाम से किया। इस पुस्तक में चौंतीस पाठों एवं अभ्यासों के माध्यम से सरल ढंग से संस्कृत सीखने की प्रक्रिया बतायी गयी है। बेलेन्टाइन की यह रचना देश-विदेश में संस्कृत शिक्षार्थियों के मध्य विशेष प्रसिद्ध हुई। बेलेन्टाइन ने सांख्यसूत्र एवं न्यायतत्त्व कौमुदी का अनुवाद किया। भारतीयता के रंग में रंगे इस पाश्चात्त्य विद्वान् ने भारतीय संस्कृतज्ञों का सम्मान ही नहीं किया अपितु, उनके स्वाध्याय के लिए यथासम्भव उपर्युक्त वातावरण का भी निर्माण किया। बेलेन्टाइन की मृत्यु 1861 ई. में हुई।[८]

जर्मनी में संस्कृत के अनुरागियों की एक समृद्ध परम्परा है। इस परम्परा में जे0जी0 वूलर का नाम उल्लेखनीय है। उनका जन्म 19 जुलाई 1837 में हुआ। वे एक जर्मन पादरी की संतान थे। वूलर ने उच्च शिक्षा हेतु गार्टिजन विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। वहाँ उनका सम्पर्क बहुभाषाविद् एवं वेदज्ञ थ्योडोर बेनफी से हुआ। वूलर ने बेनफी की प्रेरणा से वेदों का अध्ययन प्रारम्भ किया। फिर दोनों ने मिलकर सामवेद का प्रमाणिक संस्करण प्रकाशित किया। वूलर मैक्समूलर से प्रभावित होकर भारत आये। बम्बई के एलफ्रिस्टन कालेज में 1863 से 1880 ई. पर्यन्त अध्यापन कार्य किया।

वूलर ने संस्कृत ग्रन्थों के प्रकाशन हेतु बम्बई संस्कृत सीरीज की स्थापना की। इसके अन्तर्गत पंचतंत्र, दशकुमार चरित, विक्रमांकदेव चरित का सम्पादन किया। वूलर ने भाषा विज्ञान एवं वेद विषयक अनेक लेख लिखे। उन्होंने बम्बई, मद्रास एवं बंगाल में संस्कृत पाण्डुलिपियों की खोज के लिए संस्था का गठन किया। उनकी देखरेख में 2300 हस्तलिखित पाण्डुलिपियों का उद्धार किया गया। वूलर ने 1871 ई. में आपस्तम्बक सूत्र का संस्करण निकाला। वूलर ने जैन ग्रन्थों का अध्ययन कर उनका जर्मन में भावार्थ प्रकाशित किया। उन्होंने मथुरा एवं खारवेल शिलालेखों का अध्ययन कर जैन एवं बौद्ध धर्म के काल निर्णय पर महत्त्वपूर्ण कार्य किया। वूलर ने खरोष्ठी एवं ब्राह्मी लिपि के वैशिष्ट्य पर लेख लिखे तथा मनुस्मृति के काल का निर्णय करते हुए मनुस्मृति पर केन्द्रित 'द लॉज ऑफ मनु' नामक टीका लिखी। वूलर 1880 ई. में जर्मनी लौटे जहां ओरियन्टल इस्टीट्यूट की स्थापना कर ओरियन्टल जर्नल का प्रकाशन प्रारम्भ किया। उन्हें एडिनबरा विश्वविद्यालय ने डाक्टरेट तथा ब्रिटिश सरकार ने सी0आई0ई0 की उपाधि से विभूषित किया। देववाणी के इस प्रतिष्ठित उपासक की मृत्यु 16 अप्रैल 1898 ई. में हुई।[९]

संस्कृत के उत्थान के लिए प्रत्यनशील पाश्चात्त्यों में एक महत्त्वपूर्ण नाम है आर्थर वेनिस। वेनिस का जन्म बनारस में हुआ था। उन्होंने गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज बनारस में 1888 से 1918 ई0 तक प्राध्यापक

---

[८] आचार्य पं0 बलदेव उपाध्याय-काशी की पाण्डित्य परम्परा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, द्वितीय संस्करण-1994

[९] वही, पृ0 95-96

एवं प्राचार्य के रूप में कार्य किया। वे संस्कृत एवं भारतीय संस्कृति के बड़े प्रशंसक थे। उन्होंने सिद्धान्त मुक्तावली का अंग्रेजी अनुवाद किया। वेदान्त परिभाषा का अनुवाद किया। वेनिस ने चौखम्बा संस्कृत सीरीज एवं बनारस संस्कृत सीरीज को प्रोत्साहन दिया। जिनके अन्तर्गत अनेक महत्त्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ। वेनिस के द्वारा किया गया एक और महत्त्वपूर्ण कार्य था बनारस संस्कृत कालेज का पुस्तकालय, जो आज सरस्वती भवन के नाम से प्रसिद्ध है, का निर्माण कराना। वे स्वयं शोध छात्रों को अभिलेखाशास्त्र, वेदान्तशास्त्र एवं इतिहास पढ़ाते थे। उनकी सत् प्रेरणा से ही पं0 गोपीनाथ कविराज ने अनेक हस्तलिखित पाण्डुलिपियों का प्रकाशन किया। संस्कृत के बड़े अनुरागी वेनिस की मृत्यु बनारस में ही 14 अप्रैल 1918 ई. में हुई।[१०]

प्रस्तुत सारणी के अगले विद्वान् टी0एच0 ग्रिफिथ हैं। वे बनारस स्थित गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, जो वर्तमान में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के नाम से जाना जाता है, में 1861 से 1870 ई. तक प्राचार्य के पद पर कार्यरत रहे। इस परिसर में ग्रिफिथ के नाम से एक चबूतरा है, जिस पर वे बैठकर अध्ययन किया करते थे। ग्रिफिथ ने चारों वेदों का पद्यानुवाद किया, जिसकी सर्वत्र प्रशंसा हुई। उन्होंने वाल्मीकीय रामायण का अंग्रेजी अनुवाद किया। ग्रिफिथ ने रामायण की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि 'रामायण हर देश, जाति और युग के साहित्य को ऐसा काव्य प्रस्तुत करने का उच्चस्वर में निमंत्रण देता है, जिसमें राम, सीता के समान पूर्ण मनुष्य हों। कवित्व और नैतिकता की ऐसी आकर्षक एकता और कहीं नहीं दिखाई देती जैसा कि इस पवित्र ग्रन्थ में है।' ग्रिफिथ की अन्य पुस्तकों में 'सीन्स फ्रॉम द रामायण', 'टेक्स्ट फ्रॉम संस्कृत' आदि प्रमुख हैं। ग्रिफिथ ने एक संस्कृत पत्रिका 'दी पण्डित' का प्रकाशन आठ वर्षों तक किया।[११]

संस्कृत के सर्वांगीण विकास के लिए जिन पाश्चात्यों ने प्रयास किया, उनमें जी.थीबो का नाम उल्लेखनीय है। थीबो का जन्म 1848 ई. में जर्मनी में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा जर्मनी में प्राप्त करने के बाद वे उच्च शिक्षा हेतु लन्दन गये। थीबो को लन्दन में मैक्समूलर के सानिध्य में रहने का अवसर मिला। उन्होंने संस्कृत सीखा और भारत आये। थीबो के द्वारा ही सर्वप्रथम संस्कृत में योग्यता के मानकों-प्रथमा, मध्यमा, शास्त्री आदि को स्थापित किया गया। थीबो ने 1888 ई. के बाद इलाहाबाद स्थित म्योर सेंट्रल कालेज, जो बाद में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के नाम से जाना गया, में अंग्रेजी और दर्शन शास्त्र के प्राध्यापक के रूप में कार्य किया। डॉ0 थीबो का शुल्वसूत्रों पर किया गया कार्य विशेष उल्लेखनीय है। उनके अनुसार भारतीयों को वैदिक काल से ही ज्योमिति का ज्ञान था, उसी ज्ञान के आधार पर वे यज्ञवेदी का निर्माण करते थे। थीबो ने बौधायन शुल्वसूत्र के बाद वराह मिहिर कृत पंचसिद्धान्तिका का अनुवाद

---

[१०] एम. विण्टरनिट्ज-प्राचीन भारतीय साहित्य का इतिहास भाग-1, पृ0 18

[११] आचार्य पं0 बलदेव उपाध्याय-काशी की पाण्डित्य परम्परा, पृ0 100-101

किया। उन्होंने वेदान्तसूत्र (शांकर भाष्य) वेदान्तसूत्र (रामानुज भाष्य) का अनुवाद करके सीक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट में 1904 ई. में प्रकाशित किया। थीबो की योग्यता को देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने उन्हें तात्कालिक सर्वोच्च सम्मान सी0आई0ई0 से सम्मानित किया।[१२]

भारत में बौद्ध एवं जैन धर्म से सम्बद्ध प्रचुर साहित्य की रचना हुई। इनमें अधिकांश पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश में हैं तो कुछ संस्कृत में। इन ग्रन्थों के ज्ञानराशि ने अनेक पाश्चात्त्य विद्वानों को आकृष्ट किया। जिनमें डॉ0 हर्मन जी0 जैकोबी प्रमुख हैं। उनका जन्म 1850 ई0 में जर्मनी में हुआ। वे दर्शन शास्त्र में आचार्य की उपाधि प्राप्त कर डॉ0 वूलर के साथ 1873 ई. में भारत आये। जैकोबी ने कुछ समय तक कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत एवं अलंकार शास्त्र के शिक्षक के रूप में कार्य किया। उक्त अवधि में जैकाबी ने जैन साहित्य का अध्ययन कर 'कल्पसूत्र' का सम्पादन किया। हेमचन्द्र कृत 'परिशिष्ट पर्व' का प्रकाशन किया। उन्होंने ध्वन्यालोक तथा अलंकार सर्वस्व का जर्मन भाषा में अनुवाद किया। जैकोबी ने रामायण का जर्मन भाषा में अनुवाद किया। उन्होंने रामायण के कुछ अंशों को प्रक्षिप्त बताया है, यद्यपि विद्वानों में इस पर सहमति नहीं बन पायी। जैकोबी ने बाल गंगाधर तिलक की भांति ही वेदों का काल गणित एवं फलित ज्योतिष के आधार पर 4500 ई0पू0 से लेकर 2500 ई0पू0 के मध्य माना है। जैकोबी ने अनेक अपभ्रंश साहित्य के ग्रन्थों का सम्पादन किया। मैक्समूलर द्वारा प्रारम्भ की गयी ग्रन्थमाला 'सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट' के सम्पादन एवं प्रकाशन में जैकोबी की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।[१३]

निष्कर्ष –

इस प्रकार कहा जा सकता है कि संस्कृत के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से उपर्युक्त विदेशी विद्वानों का अवदान नितान्त महत्त्वपूर्ण है। इन विद्वानों ने न केवल संस्कृत के बृहद् स्वरूप का परिचय वैश्विक मनीषा से कराया अपितु संस्कृत को समझने की इनकी वैज्ञानिक दृष्टि ने शोध के एक नवीन और उर्वर क्षेत्र का भी सृजन किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. मैक्समूलर (अनु. कमलाकर तिवारी)-भारत से हम क्या सीखें? इतिहास प्रकाशन संस्थान 492, मालवीय नगर, इलाहाबाद, जुलाई 1964 ई
2. कृष्णचन्द्र श्रीवास्तव-प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति, यूनाइटेड बुक डिपो-21, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद, नवम संस्करण-2007-08

---

[१२] वही, पृ0 97-98

[१३] जगदीश प्रसाद बरनवाल 'कुन्द'-विदेशी विद्वानों का संस्कृत प्रेम, पृ0 111-113

3. जगदीश प्रसाद बरनवाल 'कुन्द'-विदेशी विद्वानों का संस्कृत प्रेम, मेघा बुक्स एक्स-11, नवीन शाहदरा-दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017 ई.
4. एम. विण्टरनिट्ज-प्राचीन भारतीय साहित्य का इतिहास भाग-1, मोतीलाल बनारसी दास, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-1975 ई.
5. आचार्य पं0 बलदेव उपाध्याय-काशी की पाण्डित्य परम्परा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, द्वितीय संस्करण-1994ई.
6. एम. विण्टरनिट्ज-प्राचीन भारतीय साहित्य का इतिहास भाग-1
7. आचार्य पं0 बलदेव उपाध्याय-काशी की पाण्डित्य परम्परा,
8. जगदीश प्रसाद बरनवाल 'कुन्द'-विदेशी विद्वानों का संस्कृत प्रेम
9. आचार्य पं0 बलदेव उपाध्याय-वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, 37 बी0 रवीन्द्रपुरी, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी, पंचम संस्करण 1989 ई.

अन्य सहायक ग्रन्थ-

1. अद्भुत भारत-ए0एल0 बाशम (अनु0 वेंकटेशचन्द्र पाण्डेय), शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 2020 ई
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास-ए0बी0 कीथ (अनु0 मंगलेदव शास्त्री), मोतीलाल बनारसी दास, बंग्लोरोड,नई दिल्ली, सातवां संस्करण-2016 ई.
3. संस्कृति के चार अध्याय-रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, 2004ई.

सहायक शोधपत्र-

1. प्रो0 ओमप्रकाश पाण्डेय-जर्मनी में वेदानुशीलन की परम्परा, वेद विद्या ISSN 2230-8962 जुलाई-दिसम्बर, 2014 ई.
2. प्रो0 राधावल्लभ त्रिपाठी-संस्कृतसाहित्येतिहास 'पुनर्लेखन व पुनर्व्यवस्थापन' की समस्यायें-साहित्य सामाख्या ई ISSN-2349-851X2016-2017 ई.
3. डॉ. शैलेन्द्र नाथ कपूर-18वीं तथा 19वीं शती ई. में प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृत को प्रकाशित करने वाले प्रेरक मनीषी, प्रो. कृष्णदत्त बाजपेयी स्मृति विशेषांक, डॉ0 ए0एल0 श्रीवास्तव (सम्पा0), पांचाल शोध संस्थान 52/16 शक्कर पट्टी, कानपुर-208001, 1992 ई.

~~~~~~~~~~
~~~~~~~~~~